

Chapter पच्चीस

भगवान् अनन्त की महिमा

इस अध्याय में शुकदेव गोस्वामी भगवान् शिव के उत्स अनन्त का वर्णन किया है जिनका शरीर पूर्णतया आध्यात्मिक हैं। भगवान् अनन्त पाताल लोक के मूल में निवास करते हैं। वे भगवान् शिव के हृदय-देश में सदैव निवास करने वाले हैं और इस ब्रह्माण्ड का संहार करने में इनकी सहायता करते हैं। अनन्त बताते हैं कि इस विश्व का कैसे संहार हो इसलिए वे कभी-कभी तामसी अर्थात् तमोगुणी कहे जाते हैं। वे भौतिक चेतना के अधिष्ठाता देव हैं और चूँकि वे समस्त जीवों को आकृष्ट कर लेते हैं, इसलिए कभी-कभी वे संकर्षण भी कहलाते हैं। यह सम्पूर्ण भौतिक जगत भगवान् संकर्षण के फणों पर टिका है। वे अपने शिर के अग्रभाग से भगवान् शिव को इस भौतिक जगत के संहार हेतु शक्ति प्रदान करते हैं। चूँकि संकर्षण पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के स्वांश हैं, इसलिए अनेक भक्तजन उनकी स्तुति करते हैं और पाताललोक के समस्त सुर, असुर, गंधर्व, विद्याधर तथा ऋषि-मुनि उनको सादर नमस्कार करते हैं। भगवान् उनसे मृदु वाणी बोलते हैं। उनका शरीर पूर्णतया चिन्मय एवं अत्यन्त

मनोहर है। जो कोई किसी प्रामाणिक गुरु से उनके सम्बन्ध में सुनता है, वह समस्त भवबन्धनों से छूट जाता है। सम्पूर्ण भौतिक शक्ति (माया) अनन्तदेव की योजना के अनुसार क्रियाशील है। अतः उन्हें इस भौतिक सृष्टि का मूल कारण मानना चाहिए। उनके बल का कोई अन्त नहीं है, न ही असंख्य मुखों से उनका कोई पूर्ण वर्णन ही कर सकता है। इसलिए वे अनन्त कहे जाते हैं। समस्त जीवों के प्रति दयालु होने के कारण उनका चिन्मय शरीर प्रकट हुआ। शुकदेव गोस्वामी महाराज परीक्षित से अनन्तदेव के यश का वर्णन इस प्रकार करते हैं।

श्रीशुक उवाच

तस्य मूलदेशे त्रिंशद्योजनसहस्रान्तर आस्ते या वै कला भगवतस्तामसी समाख्यातानन्त इति सात्वतीया
द्रष्टृदृश्ययोः सङ्कर्षणमहमित्यभिमानलक्षणं यं सङ्कर्षणमित्याचक्षते ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्रीशुकदेव गोस्वामी बोले; तस्य—पाताललोक के; मूल-देशे—मूलभाग में; त्रिंशत्—तीस; योजन—आठ मील की दूरी की इकाई; सहस्र-अन्तरे—एक हजार (योजन) की दूरी पर; आस्ते—स्थित है; या—जो; वै—निश्चय ही; कला—अंश का अंश; भगवतः—श्रीभगवान् का; तामसी—अंधकार से सम्बन्धित; समाख्याता—कहलाने वाला; अनन्तः—अनन्त; इति—इस प्रकार; सात्वतीयाः—भक्तगण; द्रष्टृ-दृश्ययोः—पदार्थ तथा आत्मा का; सङ्कर्षणम्—परस्पर आकर्षित करने वाला; अहम्—मैं; इति—इस प्रकार; अभिमान—आत्म-सम्मान; लक्षणम्—लक्षण; यम्—जिसको; सङ्कर्षणम्—संकर्षण; इति—इस प्रकार; आचक्षते—विद्वान् कहते हैं।

श्रीशुकदेव गोस्वामी ने महाराज परीक्षित से कहा—हे राजन्, पाताल लोक से २,४०,००० मील नीचे श्रीभगवान् के एक अन्य अवतार निवास करते हैं। वे भगवान् अनन्त अथवा भगवान् संकर्षण कहलाते हैं और भगवान् विष्णु के अंश हैं। वे सदैव दिव्य पद पर आसीन हैं, किन्तु तमोगुणी देवता भगवान् शिव के आराध्य होने के कारण कभी-कभी तामसी कहलाते हैं। भगवान् अनन्त सभी बद्धजीवों के अहं तथा तमोगुण के प्रमुख देवता हैं। जब बद्धजीव यह सोचता है कि यह संसार भोग्य है और मैं उसका भोक्ता हूँ तो यह जीवन-दृष्टि संकर्षण द्वारा प्रेरित होती है। इस प्रकार संसारी बद्धजीव स्वयं को ही परमेश्वर मानने लगता है।

तात्पर्य : मायावादी दार्शनिकों की तरह ही मनुष्यों का एक वर्ग है जो अहं ब्रह्मास्मि तथा सोऽहं वैदिक मन्त्रों का अर्थ “मैं ही परब्रह्म हूँ” तथा “मैं ईश्वर से अभिन्न हूँ” लगाता है। इस प्रकार की झूठी विचारधारा एक प्रकार का मोह है। इसका वर्णन श्रीमद्भागवत (५.५.८) में जनस्य मोहोऽयमहं ममेति के रूप में हुआ है। जैसाकि उपर्युक्त श्लोक में कहा गया है इस झूठी विचारधारा के प्रेरक

श्रीमूर्ति भगवान् संकर्षण हैं। श्रीकृष्ण ने *भगवद्गीता* (१५.१५) में इसकी पुष्टि की है—

सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टो

मत्तःस्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च।

“मैं सब प्राणियों के हृदय में स्थित हूँ और मुझसे ही स्मृति, ज्ञान तथा विस्मृति उत्पन्न होती है।” ईश्वर सबों के हृदयों में संकर्षण रूप में स्थित हैं और जब कोई असुर अपने आपको परमेश्वर से एकाकार मानता है, तो ईश्वर उसे उस अंधकार में रहने देते हैं। यद्यपि ऐसा आसुरी जीव परमेश्वर का एक नगण्य विभिन्नांश मात्र होता है, किन्तु जीव अपनी वास्तविक स्थिति को भूलकर अपने को परमेश्वर समझने लगता है। चूँकि ऐसी विस्मृति भगवान् संकर्षण द्वारा उत्पन्न की जाती है इसलिए कभी-कभी उन्हें *तामसी* कहा जाता है। तामसी शब्द से यह इंगित नहीं होता कि उनका भौतिक शरीर है। वे सदैव दिव्य हैं, किन्तु तामसी कार्यों के कर्ता भगवान् शिव की परम-आत्मा होने के कारण संकर्षण कभी-कभी तामसी कहलाते हैं।

यस्येदं क्षितिमण्डलं भगवतोऽनन्तमूर्तेः सहस्रशिरस एकस्मिन्नेव शीर्षणि ध्रियमाणं सिद्धार्थं इव लक्ष्यते ॥ २ ॥

शब्दार्थ

यस्य—जिसका; इदम्—यह; क्षिति-मण्डलम्—ब्रह्माण्ड; भगवतः—श्रीभगवान् का; अनन्त-मूर्तेः—अनन्त देव के रूप में; सहस्र-शिरसः—एक हजार फणों वाले; एकस्मिन्—एक; एव—केवल; शीर्षणि—फण में; ध्रियमाणम्—रखा हुआ; सिद्धार्थः इव—(तथा) श्वेत सरसों के दाने के तुल्य; लक्ष्यते—दिखाई पड़ता है।

शुकदेव गोस्वामी ने आगे कहा—भगवान् अनन्त के सहस्र फणों में से एक फण के ऊपर रखा हुआ यह विशाल ब्रह्माण्ड श्वेत सरसों के दाने के समान प्रतीत होता है। भगवान् अनन्त के फण की तुलना में यह नगण्य है।

यस्य ह वा इदं कालेनोपसञ्जिहीर्षतोऽमर्षविरचितरुचिरभ्रमद्भ्रुवोरन्तरेण साङ्कर्षणो नाम रुद्र एकादशव्यूहस्यक्षस्त्रिशिखं शूलमुत्तम्भयन्नुदतिष्ठत् ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

यस्य—जिसका; ह वा—निस्सन्देह; इदम्—यह (जगत); कालेन—कालक्रम से; उपसञ्जिहीर्षतः—संहार करने की कामना करते हुए; अमर्ष—क्रोध से; विरचित—निर्मित; रुचिर—अत्यन्त सुन्दर; भ्रमत्—घूमते हुए; भ्रुवोः—भ्रुकुटियाँ के; अन्तरेण—भीतर से; साङ्कर्षणः नाम—सांकर्षण नामक; रुद्रः—भगवान् शिव के अवतार, रुद्र; एकादश-व्यूहः—ग्यारह विस्तारों वाला; त्रि-अक्षः—तीन नेत्र; त्रि-शिखम्—तीन नोकों वाले; शूलम्—त्रिशूल; उत्तम्भयन्—उठाते हुए; उदतिष्ठत्—उठा।

प्रलयकाल उपस्थित होने पर जब भगवान् अनन्तदेव सम्पूर्ण सृष्टि का संहार करना चाहते हैं, तो वे कुछ क्रुद्ध हो जाते हैं। तब उनकी दोनों भृकुटियों के बीच से त्रिशूल धारण किये हुए त्रिनेत्र रुद्र प्रकट होते हैं। यह रुद्र, जो संकर्षण कहलाते हैं, ग्यारह रुद्रों, अर्थात् भगवान् शिव के अवतारों का व्यूह होता है। वे सम्पूर्ण सृष्टि के संहार हेतु प्रकट होते हैं।

तात्पर्य : प्रत्येक सृष्टि में जीवात्माओं को अवसर प्रदान किया जाता है कि वे बद्ध जीवत्माओं के रूप में अपने कार्यकलाप समाप्त कर लें। जब वे इस अवसर का दुरुपयोग करती हैं और भगवान् के धाम को वापस नहीं जातीं तो भगवान् संकर्षण क्रोधित होते हैं। क्रोध के कारण भगवान् संकर्षण की भृकुटियों से भगवान् शिव के अंश रूप ग्यारह रुद्र प्रकट होते हैं और वे सब मिलकर सम्पूर्ण सृष्टि का संहार कर देते हैं।

यस्याङ्घ्रिकमलयुगलारुणविशदनखमणिषण्डमण्डलेष्वहिपतयः सह

सात्वतर्षभैरेकान्तभक्तियोगेनावनमन्तः स्ववदनानि

परिस्फुरत्कुण्डलप्रभामण्डितगण्डस्थलान्यतिमनोहराणि प्रमुदितमनसः खलु विलोकयन्ति ॥ ४ ॥

शब्दार्थ

यस्य—जिसके; अङ्घ्रि-कमल—चरणकमल; युगल—दोनों; अरुण-विशद—चटक गुलाबी; नख—नाखूनों का; मणि-षण्ड—मणियों के समान; मण्डलेषु—गोलाकार पृष्ठों पर; अहि-पतयः—सर्पों के स्वामी; सह—साथ; सात्वत-ऋषभैः—श्रेष्ठ भक्तों के; एकान्त-भक्ति-योगेन—शुद्ध भक्ति के साथ; अवनमन्तः—नमस्कार करते हुए; स्व-वदनानि—अपने-अपने मुखों; परिस्फुरत्—चमकते हुए; कुण्डल—कान की बालियों की; प्रभा—ज्योति से; मण्डित—अलंकृत; गण्ड-स्थलानि—जिनके गाल; अति-मनोहराणि—अत्यन्त मनोहर; प्रमुदित-मनसः—प्रसन्न मन से; खलु—निस्सन्देह; विलोकयन्ति—देखते हैं।

भगवान् संकर्षण के चरणकमलों के गुलाबी तथा पारदर्शी नाखून मानो दर्पण जैसे चमकाये गये बहुमूल्य मणि हैं। जब शुद्ध भक्त तथा नागों के अधिपति अत्यन्त भक्तिभाव से उन्हें नमस्कार करते हैं, तो उनके चरण-नाखों में अपने सुन्दर मुखों की छाया देखकर अत्यन्त प्रमुदित हो उठते हैं। उनके गालों पर कान की देदीप्यमान् बालियाँ दमकती हैं और उनकी मुख-कान्ति अत्यन्त मोहक होती है।

यस्यैव हि नागराजकुमार्य आशिष

आशासानाश्चार्वाङ्गवलयविलसितविशदविपुलधवलसुभगरुचिरभुजरजतस्तम्भेष्वगुरुचन्दनकुङ्कुमपङ्कानु
लेपेनावलिम्पमानास्तदभिमर्शनोन्मथितहृदयमकरध्वजावेशरुचिरललितस्मितास्तदनुरागमदमुदितमदविधूर्ति
णतारुणकरुणावलोकनयनवदनारविन्दं सव्रीडं किल विलोकयन्ति ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

यस्य—जिसकी; एव—ही; हि—निस्सन्देह; नाग-राज-कुमार्यः—नागराज की कुमारियाँ; आशिषः—आशीर्वाद;
 आशासानाः—आशावान होकर; चारु—सुन्दर; अङ्ग-वलय—शरीर मंडल पर; विलसित—शोभित; विशद—निष्कलंक;
 विपुल—दीर्घ; धवल—श्वेत; सुभग—सौभाग्यसूचक; रुचिर—सुन्दर; भुज—भुजाओं पर; रजत-स्तम्भेषु—चाँदी के ख भों के
 समान; अगुरु—सुगन्धित पदार्थ का; चन्दन—चन्दन का; कुङ्कुम—केशर का; पङ्क—चंदन से; अनुलेपेन—लेप से;
 अवलिम्पमानाः—लेपन करके; तत्-अभिमर्शन—अपने अंगों में स्पर्श द्वारा; उन्मथित—मथा हुआ; हृदय—हृदयों में; मकर-
 ध्वज—कामदेव का; आवेश—प्रवेश के कारण; रुचिर—अत्यन्त सुन्दर; ललित—नम्र; स्मिताः—मन्द-हास्य करती हुई;
 तत्—उसका; अनुराग—अनुराग; मद—गर्व से; मुदित—प्रसन्न; मद—दया के गर्व से; विघूर्णित—घूमती हुई; अरुण—
 गुलाबी; करुण-अवलोक—करुणा की दृष्टि से; नयन—नेत्र; वदन—(तथा) मुख; अरविन्दम्—कमलपुष्प के सदृश; स-
 व्रीडम्—सलज्ज; किल—निस्सन्देह; विलोकयन्ति—देखते हैं।

भगवान् अनन्त की आकर्षक दीर्घ भुजाएँ कंगनों से आकर्षक ढंग से अलंकृत हैं और पूर्णतया आध्यात्मिक हैं। श्वेत होने के कारण वे चाँदी के ख भों सी प्रतीत होती हैं। जब भगवान् के शुभाशीर्वाद की इच्छुक नागराजों की कुमारियाँ उनकी बाहों में अगुरु, चन्दन तथा कुमकुम का लेप लगाती हैं, तो उनके स्पर्श से उनके भीतर कामेच्छा जाग्रत हो उठती है। उनके मनोभावों को समझ कर भगवान् जब इन राजकुमारियों को कृपापूर्ण मुस्कान से देखते हैं, तो वे यह सोचकर लजा जाती हैं कि वे उनके मनोभावों को जानते हैं। तब वे मनोहर मुस्कान सहित भगवान् के मुखकमल को देखती हैं, जो उनके भक्तों के प्यार से प्रमुदित तथा मद-विह्वल घूमती हुई लाल-लाल आँखों से सुशोभित रहता है।

तात्पर्य : जब स्त्री तथा पुरुष एक दूसरे के शरीर का स्पर्श करते हैं, तो सहज ही उनके मन में काम-भावना जाग्रत होती है। इस श्लोक से ऐसा सूचित होता है कि अलौकिक देहों में भी ऐसी ही अनुभूति होती है। भगवान् अनन्त तथा उन्हें सुख देने वाली नारियों दोनों ही के शरीर अलौकिक थे। इस प्रकार सभी अनुभूतियाँ मूलतः अलौकिक देह में विद्यमान रहती हैं। वेदान्त सूत्र से इसकी पुष्टि होती है—*जन्माद्यस्य यतः*। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर की इस सम्बन्ध में टीका है कि *आदि* शब्द का अर्थ है *आदिरस* जिसका उद्भव परमेश्वर से होता है। किन्तु आध्यात्मिक काम तथा प्राकृत काम में वैसा ही अन्तर है जैसाकि सोने तथा लोहे में। जो आत्म-साक्षात्कार में जितना ही अधिक सिद्ध होगा वह राधा एवं कृष्ण अथवा कृष्ण एवं व्रज की बालाओं के मध्य की कामभावनाओं को समझ सकता है। इसीलिए जब तक कोई अति अनुभवी तथा आत्मसिद्ध न हो उससे कृष्ण और गोपियों की कामभावनाओं की चर्चा करने के लिए निषेध किया जाता है। किन्तु यदि कोई शुद्ध एवं निष्ठावान् भक्त हो तो गोपी एवं कृष्ण की काम-अनुभूतियों की चर्चा करते समय उसका हृदय पूर्णतया कामरहित होता

है और वह आध्यात्मिक जीवन में तेजी से उन्नति करता है।

स एव भगवाननन्तोऽनन्तगुणार्णव आदिदेव उपसंहतामर्षरोषवेगो लोकानां स्वस्तय आस्ते ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

सः—वह; एव—निश्चय ही; भगवान्—श्रीभगवान्; अनन्तः—अनन्तदेव; अनन्त-गुण-अर्णवः—असीम दिव्य गुणों के सागर; आदि-देवः—आदि ईश्वर अथवा आद्य पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् से अभिन्न रूप; उपसंहत—जिसने इन्द्रियनिग्रह किया है; अमर्ष—उसकी असहनशीलता का; रोष—(तथा) क्रोध; वेगः—वेग, शक्ति; लोकानाम्—सभी लोकों के मनुष्यों के; स्वस्तये—कल्याण हेतु; आस्ते—रहते हैं।

भगवान् संकर्षण अनन्त दिव्य गुणों के सागर हैं जिससे वे अनन्तदेव कहलाते हैं। वे पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् से अभिन्न हैं। इस जगत के समस्त जीवों के कल्याण हेतु वे अपने क्रोध तथा अपनी असहनशीलता को रोके हुए अपने धाम में निवास करते हैं।

तात्पर्य : अनन्तदेव का मूल उद्देश्य इस भौतिक सृष्टि को विलय करना है, किन्तु वे अपने रोष तथा अमर्ष को रोके रहते हैं। इस जगत की सृष्टि बद्ध-जीवात्माओं को भगवान् के धाम जाने के लिए एक और अवसर प्रदान करने के लिए की जाती है, किन्तु अधिकांश जीव इस अवसर का लाभ नहीं उठाते। सृष्टि के बाद वे भौतिक जगत पर फिर से अपना प्रभुत्व जताना चाहते हैं। इन क्रियाओं से अनन्तदेव क्रुद्ध हो उठते हैं और सम्पूर्ण भौतिक जगत को विनष्ट कर देना चाहते हैं। किन्तु श्रीभगवान् होने के कारण वे हम पर दयालु हैं और अपने रोष तथा अमर्ष को रोक लेते हैं। कभी-कभी ही वे अपना रोष प्रकट करते हैं और भौतिक जगत का विनाश कर देते हैं।

ध्यायमानः सुरासुरोरगसिद्धगन्धर्वविद्याधरमुनिगणैरनवरतमदमुदितविकृतविह्वललोचनः

सुललितमुखरिकामृतेनाप्यायमानः स्वपार्षदविबुधयूथपतीनपरिम्लानरागनवतुलसिकामोदमध्वासवेन
माद्यन्मधुकरत्रातमधुरगीतश्रियं वैजयन्तीं स्वां वनमालां नीलवासा एककुण्डलो हलककुदि
कृतसुभगसुन्दरभुजो भगवान्महेन्द्रो वारणेन्द्र इव काञ्चनीं कक्षामुदारलीलो बिभर्ति ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

ध्यायमानः—ध्यान किये जाते हुए; सुर—देवताओं को; असुर—असुर; उरग—सर्प; सिद्ध—सिद्धलोक के वासी; गन्धर्व—गंधर्वलोक के वासी; विद्याधर—विद्याधर; मुनि—मुनि; गणैः—समूहों द्वारा; अनवरत—लगातार; मद-मुदित—मद से प्रसन्न; विकृत—चञ्चल; विह्वल—इधर-उधर घूमते हुए; लोचनः—जिनके नेत्र; सु-ललित—सुललित; मुखरिक—वाणी के; अमृतेन—अमृत से; आप्यायमानः—अच्छे लगने वाले; स्व-पार्षद—अपने सहयोगी; विबुध-यूथ-पतीन्—देवताओं के विभिन्न समूहों के प्रमुख; अपरिम्लान—कभी न म्लान होने वाले; राग—जिसकी कांति; नव—नवीन; तुलसिका—तुलसी की मंजरियों की; आमोद—सुगंधि से; मधु-आसवेन—तथा मधु (शहद) से; माद्यन्—मद से युक्त होकर; मधुकर-त्रात—मधुमक्खियों का; मधुर-गीत—मीठे गानों से; श्रीयम्—अधिक सुन्दर बनकर; वैजयन्तीम्—वैजयन्ती नामक माला; स्वाम्—अपना; वनमालाम्—माला; नील-वासाः—नीले अम्बर से आवृत; एक-कुण्डलः—केवल एक कुण्डल धारण किये हुए; हल-ककुदि—हल की

मुठिया पर; कृत—रखा हुआ; सुभग—शुभ; सुन्दर—सुन्दर; भुजः—हाथ; भगवान्—श्रीभगवान्; महा-इन्द्रः—स्वर्ग के राजा; वारण-इन्द्रः—हाथी; इव—सदृश; काञ्चनीम्—स्वर्णिम; कक्षाम्—मेखला; उदार-लीलः—दिव्य लीलाओं में संलग्न; विभर्ति—पहनते हैं।

शुकदेव गोस्वामी आगे बोले—देवता, असुर, उरग (सर्पदेव), सिद्ध, गंधर्व, विद्याधर तथा अनेक सिद्ध सन्तजन भगवान् की निरन्तर प्रार्थना करते रहते हैं। मद के कारण भगवान् विह्वल प्रतीत होते हैं और उनके नेत्रपूर्ण पुष्पित फूलों की भाँति इधर-उधर गति करते हैं। वे अपने मुख से निकली मधुर वाणी से अपने पार्षदों, देवताओं के प्रमुखों को प्रसन्न करते हैं। नीलाम्बर और कान में एक कुण्डल धारण किये हुए वे अपनी पीठ पर हल को अपने दो सुघड़ हाथों से पकड़े हुए हैं। वे इन्द्र के समान श्वेत लगते हैं, वे अपनी कटि में स्वर्णिम मेखला और गले में चिर नवीन तुलसी दलों की वैजयन्तीमाला धारण किये हैं। तुलसी दलों की मधु जैसी गन्ध से आकर्षित होकर मधुमक्खियाँ माला के चारों ओर मँडराती रहती हैं, जिससे माला और भी सुन्दर लगने लगती है। इस प्रकार भगवान् दिव्य लीलाओं में संलग्न रहते हैं।

य एष एवमनुश्रुतो ध्यायमानो मुमुक्षूणामनादिकालकर्मवासनाग्रथितमविद्यामयं हृदयग्रन्थि
सत्त्वरजस्तमोमयमन्तर्हृदयं गत आशु निर्भिन्नति तस्यानुभावान्भगवान्स्वायम्भुवो नारदः सह तुम्बुरुणा
सभायां ब्रह्मणः संश्लोकयामास. ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

यः—जो; एषः—यही; एवम्—इस प्रकार; अनुश्रुतः—प्रामाणिक गुरु से सुना जाकर; ध्यायमानः—ध्यान किया गया; मुमुक्षूणाम्—बद्ध जीवन से मुक्ति के आकांक्षी मनुष्यों का; अनादि—अनन्त; काल—काल; कर्म-वासना—कर्मों की कामना द्वारा; ग्रथितम्—दृढ़ता से बँधा हुआ; अविद्या-मयम्—माया शक्ति से युक्त; हृदय-ग्रन्थिम्—हृदय के भीतर की गाँठ; सत्त्व-रजः-तमः-मयम्—प्रकृति के तीनों गुणों से युक्त; अन्तः-हृदयम्—हृदय के भीतर; गतः—स्थित; आशु—शीघ्र ही; निर्भिन्नति—काटता है; तस्य—संकर्षण का; अनुभावान्—यश; भगवान्—अत्यन्त शक्तिमान; स्वायम्भुवः—ब्रह्मा के पुत्र; नारदः—नारद मुनि; सह—साथ; तुम्बुरुणा—तारयुक्त वाद्य यंत्र, तँबूरा के; सभायाम्—सभा में; ब्रह्मणः—भगवान् ब्रह्मा का; संश्लोकयाम् आस—श्लोकों में वर्णित।

यदि भौतिक जीवन से मुक्ति पाने के इच्छुक पुरुष शिष्य परम्परा से प्राप्त गुरु के मुख से अनन्तदेव के यश को सुनते हैं और यदि वे संकर्षण का निरन्तर ध्यान धरते हैं, तो भगवान् उनके अन्तःकरण में प्रवेश करते हुए प्रकृति के तीनों गुणों के सारे कल्मष को दूर कर देते हैं और हृदय की उस कठोर ग्रंथि को काट देते हैं, जो सकाम कर्मों के द्वारा प्रकृति पर प्रभुत्व पाने की अभिलाषा के कारण अनन्त काल से दृढ़ता से बँधी हुई है। भगवान् ब्रह्मा के पुत्र नारद मुनि अपने पिता की सभा में अनन्तदेव के यश का सदैव गान करते हैं। वहाँ वे अपने द्वारा रचित शुभ

श्लोकों का गान अपने तम्बूरे के साथ करते हैं।

तात्पर्य : भगवान् अनन्तदेव के इन वर्णनों में से कोई भी काल्पनिक नहीं हैं। वे सभी दिव्य आनन्द एवं ज्ञान से पूर्ण हैं। किन्तु जब तक कोई उन्हें परम्परागत प्रामाणिक गुरु से प्रत्यक्ष नहीं सुनता, उन्हें नहीं समझ पाता। इस ज्ञान को ब्रह्माजी ने नारद मुनि को दिया और महामुनि नारद अपने संगी तम्बूरे सहित इस ज्ञान को विश्व भर में वितरित करते हैं। कभी-कभी श्रीभगवान् को उत्तमश्लोक कहकर वर्णित किया जाता है। नारद मुनि भगवान् अनन्त की प्रशंसा में अनेक श्लोक बनाते हैं, इसलिए इस श्लोक में *संश्लोकयाम् आस* (चुने हुए श्लोकों से) शब्द का व्यवहार हुआ है।

गौड़ीय सम्प्रदाय के वैष्णव ब्रह्माजी से चली आने वाली शिष्य परम्परा से सम्बद्ध हैं। ब्रह्माजी नारद के गुरुदेव हैं, नारद व्यासदेव के गुरु हैं तथा व्यासदेव ने *श्रीमद्भागवत* की रचना वेदान्त सूत्र की टीका के रूप में की। फलतः गौड़ीय सम्प्रदाय के समस्त भक्तगण *श्रीमद्भागवत* में वर्णित भगवान् अनन्त की क्रियाओं को प्रामाणिक मानते हैं और इस प्रकार उन्हें भगवान् के धाम में वापस जाने का लाभ प्राप्त होता है। बद्धजीव के हृदय का कल्मष कूड़े के ढेर के समान है जो तीन प्रकार के गुणों द्वारा, विशेष रूप से रजो तथा तमोगुणों के द्वारा, उत्पन्न होता है। यह कल्मष कामेच्छा एवं धन की लालसा के रूप में प्रकट होता है। जैसाकि यहाँ पुष्टि की गई है, जब तक मनुष्य को परम्परागत दिव्य ज्ञान प्राप्त नहीं हो जाता, तब तक उसके इस कल्मष से शुद्ध होने का कोई प्रश्न नहीं उठता।

उत्पत्तिस्थितिलयहेतवोऽस्य कल्पाः

सत्त्वाद्याः प्रकृतिगुणा यदीक्षयासन् ।

यद्रूपं ध्रुवमकृतं यदेकमात्मन्

नानाधात्कथम् ह वेद तस्य वर्त्म ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

उत्पत्ति—सृजन का; स्थिति—धारण या पालन; लय—(तथा) संहार या प्रलय; हेतवः—मूल कारण; अस्य—इस जगत के; कल्पाः—समर्थ होते हैं; सत्त्व-आद्याः—सत्त्वगुण इत्यादि; प्रकृति-गुणाः—भौतिक प्रकृति के गुण; यत्—जिसकी; ईक्षया—दृष्टि मात्र से; आसन्—हो गया; यत्-रूपम्—जिसका स्वरूप; ध्रुवम्—अपरिमित; अकृतम्—बिना उत्पत्ति हुए; यत्—जो; एकम्—एक; आत्मन्—स्वयं में; नाना—अनेक; अधात्—प्रकट हुआ; कथम्—कैसे; उ ह—निश्चय ही; वेद—जान सकता है; तस्य—उसका; वर्त्म—पथ, मार्ग।

पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की दृष्टि फेरने से ही जगत की उत्पत्ति, स्थिति तथा प्रलय के कारणस्वरूप भौतिक प्रकृति के गुणों को अपने-अपने कार्य में समर्थ कर देते हैं। परमात्मा

अनन्त तथा अनादि हैं और एक होते हुए भी अपने को नाना रूपों में प्रकट करते हैं। भला ऐसे परमेश्वर के कार्यों को मानव समाज कैसे जान सकता है?

तात्पर्य : वेदों से हमें ज्ञात होता है कि परमेश्वर भौतिक प्रकृति पर दृष्टि डालते (स ऐक्षत) हैं तो प्रकृति के तीन प्रकार के गुण प्रकट होते हैं और भौतिक जगत उत्पन्न होता है और भौतिक विविधता सृजित होती है। जब तक वे भौतिक शक्ति पर दृष्टिपात नहीं करते, तब तक इस भौतिक जगत की सृष्टि, पालन और लय की कोई सम्भावना नहीं रहती। ईश्वर सृष्टि के पहले से विद्यमान हैं फलतः वे सनातन और अपरिवर्तनशील हैं। अतः कोई कितना भी महान् विज्ञानी या दार्शनिक क्यों न हो, वह श्रीभगवान् के कार्यों की विधि को कैसे जान सकता है?

चैतन्यभागवत (आदि खण्ड १.४८-५२ तथा १.५८-६९) के निम्नलिखित उद्धरण भगवान् अनन्त के यश को बताने वाले हैं—

कि ब्रह्मा, कि शिव, कि सनकादि 'कुमार'।

व्यास, शुक, नारदादि, 'भक्त' नाम यारँ ॥

“ब्रह्माजी, शिवजी, चारों कुमार (सनक, सनातन, सनन्दन तथा सनत्कुमार), व्यासदेव, शुकदेव गोस्वामी तथा नारद—ये सभी ईश्वर के शुद्ध भक्त अथवा सनातन दास हैं।

सबार पूजित श्री-अनन्त-महाशय।

सहस्र-वदन प्रभु—भक्ति-रसमय ॥

“उपर्युक्त ये सभी विशुद्ध भक्तजन भगवान् श्री अनन्त की आराधना करते हैं। वे सहस्र फणों वाले तथा समस्त भक्ति के आगार हैं।

आदिदेव, महा-योगी, 'ईश्वर', 'वैष्णव'।

महिमार अन्त ईहा ना जानये सब ॥

“भगवान् अनन्त आदिपुरुष तथा योग के महान् नियन्ता हैं। साथ ही वे भगवान् के दास या वैष्णव हैं। उनकी महिमा का कोई अन्त नहीं है, अतः उन्हें पूर्णतया नहीं समझा जा सकता।

सेवन शुनिला, एबे शुन ठाकुराल।

आत्म-तंत्रे येन-मते वैसेन पाताल ॥

“ईश्वर के प्रति उनके सेवाभाव का मैं पहले ही वर्णन कर चुका हूँ, अब आप सुनें कि आत्मनिर्भर अनन्तदेव पाताललोक में किस प्रकार अवस्थित हैं।

श्री-नारद-गोसाजि 'तुम्बुरु' करि' संगे ।

से यश गायेन ब्रह्मा-स्थाने श्लोक-बंधे ॥

“महामुनि नारद अपने कंधे पर तुम्बुरु धारण किये हुए भगवान् अनन्त की महिमा का सदैव गायन करते रहते हैं। उन्होंने भगवान् की प्रशंसा में अनेक दिव्य श्लोकों की रचना की है।

सृष्टि, स्थिति, प्रलय, सत्त्वादि यत गुण ।

याँ दृष्टि-पाते हय, याय पुनः पुनः ॥

“भगवान् अनन्त की दृष्टिमात्र से प्रकृति के तीनों गुणों की अन्तःक्रिया होती है और सृष्टि, स्थिति तथा प्रलय उत्पन्न होते हैं। ये गुण पुनः पुनः प्रकट होते रहते हैं।

अद्वितीय-रूप, सत्य अनादि महत्त्व ।

तथापि 'अनन्त' हय, के बुझे से तत्त्व ?

“भगवान् अद्वितीय तथा अनादि सत्य रूप हैं, अतः वे अनन्तदेव कहलाते हैं। भला उन्हें कौन समझ सकता है ?

शुद्ध-सत्त्व-मूर्ति प्रभु धरेन करुणाय ।

ये-विग्रहे सबार प्रकाश सुलीलाय ॥

“उनका स्वरूप पूर्णतः आध्यात्मिक है और वे केवल अपनी करुणा से उसे प्रकट करते हैं। इस भौतिक जगत के सारे कार्यकलाप केवल उन्हीं के रूप के द्वारा संचालित हैं।

याँहारा तरंग शिखि' सिंह महावली ।

निज-जन-मनो रञ्जे हजा कुतूहली ॥

“वे अत्यन्त शक्तिशाली हैं और अपने पार्षदों तथा भक्तों को प्रसन्न करने के लिए सदा तत्पर रहते हैं।

ये अनन्त-नामेर श्रवण-संकीर्तने ।

ये-ते मते केने नाहि बोले ये-ते जने ॥

अशेष-जन्मेर बंध छिण्डे सेइ-क्षणे ।

अतएव वैष्णव ना छाड़े कभु ताने ॥

“यदि हम भगवान् अनन्तदेव की महिमा का सामूहिक कीर्तन करने के प्रयास में लग जाँए तो जन्म-जन्मांतरों से एकत्र हमारे मन के कल्मष तुरन्त धुल जाँय। अतः वैष्णवजन अनन्तदेव की महिमागान का अवसर हाथ से नहीं जाने देते।

‘शेष’ ब-इ संसारेर गति नाहिं आर ।

अनन्तेर नामे सर्व-जीवेर उद्धार ॥

“भगवान् अनन्त शेष (अपरिमित अन्त) कहलाते हैं, क्योंकि वे इस भौतिक जगत से होकर जाने वाले हमारे मार्ग का अन्त करने वाले हैं। उनकी महिमा के कीर्तन मात्र से प्रत्येक प्राणी मुक्त हो सकता है।

अनन्त पृथिवी-गिरि समुद्र-सहिते ।

ये-प्रभु धरेन गिरे पालन करिते ॥

“अनन्तदेव अपने सिर पर विशाल सागर तथा पर्वतों से युक्त लाखों ग्रहों वाले सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को धारण करते हैं।

सहस्र फणार एक-फणे ‘बिन्दु’ येन ।

अनन्त विक्रम, ना जानेन, ‘आछे’ हेन ॥

“वे इतने विराट एवं शक्तिमान हैं कि यह ब्रह्माण्ड उनके एक फण पर जलबिन्दु के समान टिका हुआ है। वे नहीं जान पाते कि यह कहाँ पर हैं।

सहस्र-वदने कृष्ण-यश निरन्तर ।

गाइते आछेन आदि-देव मही-धर ॥

“श्रीअनन्तदेव अपने एक फण में ब्रह्माण्ड को धारण किये अपने सहस्रों मुखों से श्रीकृष्ण का यशोगान करते हैं।

गायेन अनन्त, श्री-यशेर नाहिं अन्त ।

जय-भंग नाहिं कारु, दोहें—बलवन्त ॥

“यद्यपि वे अनन्तकाल से भगवान् श्रीकृष्ण का यशोगान करते रहे हैं, किन्तु उसका कोई अन्त नहीं मिला है।

अद्यापिह 'शेष'-देव सहस्र-श्रीमुखे ।

गायेन चैतन्य-यश अन्त नाहिं देखे ॥

“आज भी भगवान् अनन्त श्री चैतन्य महाप्रभु के यश का गान कर रहे हैं और इसका कोई अन्त नहीं है।”

मूर्ति नः पुरुकृपया बभार सत्त्वं
संशुद्धं सदसदिदं विभाति तत्र ।
यल्लीलां मृगपतिराददेऽनवद्या-
मादातुं स्वजनमनांस्युदारवीर्यः ॥ १० ॥

शब्दार्थ

मूर्तिम्—श्रीभगवान् के विविध रूपों को; नः—हमको; पुरु-कृपया—अत्यन्त कृपाकरके; बभार—प्रदर्शित किया; सत्त्वम्—अस्तित्व; संशुद्धम्—नितान्त दिव्य; सत्-असत् इदम्—कार्य-कारण स्वरूप यह भौतिक जगत; विभाति—प्रकाशित होता है; तत्र—जिसमें; यत्-लीलाम्—जिनकी लीलाएँ; मृग-पतिः—सिंह के समान समस्त जीवों का स्वामी; आददे—शिक्षा दी; अनवद्याम्—कल्मषहीन; आदातुम्—जीतने के लिए; स्व-जन-मनांसि—अपने भक्तों के मन में; उदार-वीर्यः—जो अत्यन्त उदार एवं शक्तिमान है।

पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के भीतर स्थूल व सूक्ष्म जगत का अस्तित्व विद्यमान है। अपने भक्तों पर अहैतुकी कृपावश वे विभिन्न दिव्य रूपों को प्रदर्शित करते हैं। परमेश्वर अत्यन्त उदार हैं एवं उनमें समस्त योग शक्तियाँ हैं। अपने भक्तों के मन को जीतने तथा उनके हृदय को आनन्दित करने के लिए वे नानाविध अवतारों में प्रकट होते हैं और अनेक लीलाएँ करते हैं।

तात्पर्य : श्रील जीव गोस्वामी ने इस श्लोक का अनुवाद इस प्रकार किया है—“श्रीभगवान् समस्त कारणों के कारण स्वरूप हैं। उनकी इच्छा से ही स्थूल तथा सूक्ष्म अवयव परस्पर क्रिया करते हैं। वे अपने शुद्ध भक्तों के हृदयों को प्रमुदित करने के लिए ही विभिन्न रूपों में अवतरित होते हैं।” उदाहरणार्थ, अपने भक्त को प्रसन्न करने के लिए परमेश्वर पृथ्वी को गर्भोदक सागर से उठाने के लिए भगवान् वराह के दिव्य रूप में अवतरित हुए।

यन्नाम श्रुतमनुकीर्तयेदकस्मा-
दातो वा यदि पतितः प्रलम्भनाद्वा ।

हन्त्यंहः सपदि नृणामशेषमन्यं

कं शेषाद्भगवत आश्रयेन्मुमुक्षुः ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

यत्—जिनका; नाम—पवित्र नाम; श्रुतम्—सुना हुआ; अनुकीर्तयेत्—जप सकता है; अकस्मात्—दैवयोग से; आर्तः—विपदाग्रस्त व्यक्ति; वा—अथवा; यदि—यदि; पतितः—पतित व्यक्ति; प्रलम्भनात्—हँसी से; वा—अथवा; हन्ति—नष्ट करता है; अंहः—पापी; सपदि—उस क्षण; नृणाम्—मानव समाज का; अशेषम्—अपरिमित; अन्यम्—दूसरे को; कम्—क्या; शेषात्—भगवान् शेष की अपेक्षा; भगवतः—श्रीभगवान् की; आश्रयेत्—शरण में जावे; मुमुक्षुः—मुक्तिकामी व्यक्ति।

यदि कोई आर्त अथवा पतित व्यक्ति भी प्रामाणिक गुरु से भगवान् का पवित्र नाम सुनकर उसका जप करता है, तो वह तुरन्त पवित्र हो जाता है। यदि वह हँसी में, अथवा अकस्मात् भी भगवन्नाम का जप करता है, तो वह तथा जो उसे सुनता है समस्त पापों से मुक्त हो जाते हैं। अतः भौतिक बन्धनों से छुटकारा चाहने वाला व्यक्ति भगवान् शेष के नाम-जप से कैसे कतरा सकता है? भला वह और किसकी शरण ग्रहण करे?

मूर्धन्यर्पितमणुवत्सहस्रमूर्ध्नो

भूगोलं सगिरिसरित्समुद्रसत्त्वम् ।

आनन्त्यादनिमित्तविक्रमस्य भूमनः

को वीर्याण्यधि गणयेत्सहस्रजिह्वः ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

मूर्धनि—शिर अथवा फण पर; अर्पितम्—स्थिर; अणु-वत्—अणु के समान; सहस्र-मूर्ध्नः—सहस्र फणों वाले अनन्त का; भू-गोलम्—यह ब्रह्माण्ड; स-गिरि-सरित्-समुद्र-सत्त्वम्—अनेक पर्वतों, वृक्षों, समुद्रों तथा जीवात्माओं सहित; आनन्त्यात्—अनन्त होने से; अनिमित्त-विक्रमस्य—अपरिमेय शक्ति; भूमनः—परमेश्वर; कः—कौन; वीर्याणि—शक्तियाँ; अधि—निस्सन्देह; गणयेत्—गिन सकता है; सहस्र-जिह्वः—भले ही सहस्र जीभें क्यों न हों।

अपरिमित होने के कारण ईश्वर की शक्ति का अनुमान नहीं लगाया जा सकता। अनेक विशाल पर्वतों, नदियों, सागरों, वृक्षों तथा जीवात्माओं से पूर्ण यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड उनके सहस्रों फणों में से एक के ऊपर अणु के समान टिका हुआ है। भला, सहस्र जिह्वाओं से भी क्या कोई उनकी महिमा का वर्णन कर सकता है?

एवम्प्रभावो भगवाननन्तो

दुरन्तवीर्योरुगुणानुभावः ।

मूले रसायाः स्थित आत्मतन्त्रो

यो लीलया क्षमां स्थितये बिभर्ति ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

एवम्-प्रभावः—इतना शक्तिशाली; भगवान्—श्रीभगवान्; अनन्तः—अनन्त; दुरन्त-वीर्य—अपार शौर्य; उरु—महान्; गुण-अनुभावः—दिव्य गुणों तथा यशों से युक्त; मूले—पादभाग में; रसायाः—निम्नतर लोकों के; स्थितः—स्थित; आत्म-तन्त्रः—पूर्णतया आत्मनिर्भर; यः—जो; लीलया—सरलतापूर्वक; क्षमाम्—ब्रह्माण्ड को; स्थितये—पालन हेतु; बिभर्ति—धारण करता है।

उन शक्तिमान भगवान् अनन्तदेव के महान् एवं यशस्वी गुणों का कोई पारावार नहीं है। वास्तव में उनका शौर्य अनन्त है। स्वयं आत्मनिर्भर होते हुए भी वे प्रत्येक वस्तु के आधार हैं। वे पाताललोक में वास करते हैं और इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को धारण किये रहते हैं।

एता ह्येवेह नृभिरुपगन्तव्या गतयो यथाकर्मविनिर्मिता यथोपदेशमनुवर्णिताः कामान्कामयमानैः ॥ १४ ॥

शब्दार्थ

एताः—ये सब; हि—निस्सन्देह; एव—ही; इह—इस ब्रह्माण्ड में; नृभिः—समस्त जीवों द्वारा; उपगन्तव्याः—उपलब्ध करने योग्य; गतयः—गन्तव्य; यथा-कर्म—अपने-अपने पूर्व कर्मों के अनुसार; विनिर्मिताः—उत्पन्न किये गये; यथा-उपदेशम्—जैसा उपदेश दिया गया; अनुवर्णिताः—तदनुसार वर्णित; कामान्—भौतिक सुख; कामयमानैः—कामना करने वालों के द्वारा।

हे राजन्, मैंने अपने गुरु से जैसा सुना था, उसी रूप में मैंने बद्धजीवों के सकाम कर्मों एवं कामनाओं के अनुसार इस जगत की सृष्टि का पूर्ण वर्णन आपसे किया है। भौतिक कामनाओं से पूर्ण बद्धजीवों को विभिन्न लोकों में अनेक स्थान प्राप्त होते रहते हैं और इस प्रकार वे इसी भौतिक सृष्टि के भीतर रहते चले आते हैं।

तात्पर्य : इस प्रसंग में श्रील भक्तिविनोद ठाकुर का गीत है—

अनादिकरम-फले,

पडि' भवार्णव-जले, तरिबारे ना देखि उपाय।

“हे प्रभो, मैं यह नहीं जानता कि मेरा भौतिक जीवन कब प्रारम्भ हुआ, किन्तु मुझे इसका पूरा अनुभव होता है कि मैं अज्ञान के इस भवसागर में गिर गया हूँ। अब मैं यह भी देख सकता हूँ कि आपके चरणकमलों की शरण के अतिरिक्त उसमें से निकलने का कोई दूसरा उपाय नहीं है।” इसी प्रकार श्री चैतन्य महाप्रभु प्रार्थना करते हैं—

अयि नन्दतनुज किकरं पतितं मां विषमे भवाम्बुधौ।

कृपया तव पादपंकजस्थितधूलीसदृशं विचिन्तय ॥

“हे भगवन्, नन्द महाराज के पुत्र! मैं आपका चिरन्तन दास हूँ। न जाने मैं कैसे अज्ञान के इस भवसागर में गिर गया हूँ। अतः कृपा करके भौतिक जीवन की विषम स्थिति से मेरा उद्धार कीजिए।”

एतावतीर्हि राजन्पुंसः प्रवृत्तिलक्षणस्य धर्मस्य विपाकगतय उच्चावचा विसदृशा यथाप्रश्नं व्याचख्ये
किमन्यत्कथयाम इति ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

एतावती:—इतने प्रकार की; हि—ही; राजन्—हे राजन्; पुंसः—मानव प्राणियों की; प्रवृत्ति-लक्षणस्य—प्रवृत्तियों द्वारा लक्षणीभूत; धर्मस्य—कार्य सम्पादन का; विपाक-गतयः—परिणामी गन्तव्य; उच्च-अवचा:—उच्च तथा निम्न; विसदृशा:—विभिन्न; यथा-प्रश्नम्—आपके प्रश्न के अनुसार; व्याचख्ये—मैंने वर्णन किया है; किम् अन्यत्—और क्या; कथयाम—कहूँ; इति—इस प्रकार।

हे राजन्, इस प्रकार मैंने आपको बताया है कि प्रायः मनुष्य किस प्रकार अपनी-अपनी इच्छाओं के अनुसार कार्य करते हैं और उसी के अनुसार उच्च या निम्न लोकों में भिन्न-भिन्न शरीर धारण करते हैं। आपने ये बातें मुझसे पूछीं थी और मैंने जो अधिकारियों से सुना है उसे आपसे बता दिया। अब आगे क्या सुनाऊँ?

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के पंचम स्कन्ध के अन्तर्गत “भगवान् अनन्त की महिमा” नामक पचीसवें अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।